ISSN 2395-051X

नृत्य कला का धार्मिक और सामाजिक महत्व

डॉ. अपर्णा चाचोंदिया

सहायक प्राध्यापक, नृत्य

शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर, उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सारांश -

सभी कलाओं का संबंध प्रत्यक्ष रूप से मानव एवं मानव जीवन में संचालित सभी गतिविधियों से रहा है, मानव से ही समाज अस्तित्व में आया। समस्त भारतीय कलायें धार्मिक पृष्ठभूमि पर ही अवस्थित है। यदि हम भारतीय कलाओं की उत्पत्ति का अध्ययन करें तो लगभग समस्त कलाओं की उत्पत्ति से जुड़ी धार्मिक कथायें हमारे शास्त्रों में उपलब्ध हैं, जिसका सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण उदाहरण भरतमुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र है। नाट्यशास्त्र को पंचम वेद भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें चारों वेदों ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद एवं सामवेद से भी सामग्री ली गई है। यह ग्रंथ विभिन्न कलाओं का आदि ग्रंथ माना जाता है। इस शोध पत्र में मुख्य रूप से नृत्यकला के धार्मिक एवं सामाजिक महत्व पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

मुख्य शब्द - धार्मिक, सामाजिक, कला, नृत्यशास्त्र।

किसी भी देश की कलायें वहाँ की सभ्यता और संस्कृति के प्रतीक चिन्ह होती है। भारत देश की नृत्यकला का स्थान आज विश्वपटल पर स्थापित हो चुका है। प्राचीनकाल में कला के दो भेद प्रचलित थे - मार्गी एवं देशी। शास्त्रीय कलाओं को मार्गी के अन्तर्गत एवं लोककलाओं को देशी के अन्तर्गत माना गया। शास्त्रीय कलायें शास्त्रों में वर्णित नियमों पर आधारित होती है, जबकि लोककलायें स्वच्छन्द होती हैं। चूँकि हम नृत्यकला पर चर्चा कर रहे हैं इसलिए भारत की शास्त्रीय नृत्यकला और लोकनृत्य कला दोनों पर समान रूप से प्रकाश डालते हुए उनके धार्मिक एवं सामाजिक महत्व पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।

नृत्यकला के इतिहास का अध्ययन करें तो हम देखते हैं कि नृत्यकला की उत्पत्ति देवी-देवताओं से मानी जाती है। नृत्योत्पत्ति से सम्बन्धित अनेकों कथायें नृत्य जगत में प्रचलित है। यह बात सर्वविदित है कि नृत्यकला के आदि देव भगवान शिव-शंकर हैं। तांडव नृत्य की उत्पत्ति भगवान शिव से हुई एवं लास्य नृत्य की उत्पत्ति भगवती पार्वती से मानी जाती है। 'तांडव' एवं 'लास्य' दोनों ही अंग नृत्यकला के महत्वपूर्ण एवं नृत्य संरचना के आधार स्तंभ है। लगभग सभी भारतीय नृत्यों में 'तांडव' एवं 'लास्य' नृत्य के दर्शन होते है। इसके अतिरिक्त भी अनेकों पौराणिक कथाओं में देवी-देवताओं के नर्तन के उद्धरण प्राप्त होते हैं, जैसे मोहनी-भस्मासुर की कथा में भगवान विष्णु द्वारा मोहनी का रूप धारण कर नृत्य द्वारा भस्मासुर को मोहित किया एवं उसको भस्म किया। भगवान श्री कृष्ण ने रास नृत्य किया एवं कालिया नाग के फन पर नृत्य करते हुए तिग्दा दिग दिग बोलों

की उत्पत्ति की जो आज भी नृत्यकला के बोलों में समाहित हैं। अर्जुन ने नृत्यकला की शिक्षा स्वर्गलोक की अप्सरा उर्वशी से प्राप्त की एवं पृथ्वी लोक पर उत्तरा को नृत्य की शिक्षा दी। माता पार्वती ने बाणासुर की पुत्री उषा को 'लास्य' नृत्य की शिक्षा दी। उषा का विवाह भगवान श्री कृष्ण के प्रपौत्र अनिरुद्ध के साथ हुआ एवं उषा ने द्वारिका की रमणियों को नृत्य की शिक्षा दी। इस तरह स्वर्ग लोक में देवताओं से उत्पन्न नृत्यकला का पृथ्वीलोक पर भी प्रचार प्रसार हुआ। ईश्वर से उत्पन्न नृत्यकला की पृष्ठभूमि धार्मिक ही है ऐसा कहा जाए तो यह गलत नहीं होगा। यदि हम नृत्यकला की प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक की विकास यात्रा का अध्ययन करें तो मुख्य रूप से हम इस यात्रा को तीन कालों में विभाजित कर सकते हैं - प्राचीन काल, मध्यकाल एवं आधुनिक काल। वैदिक काल से ही नृत्यकला का धर्म से घनिष्ट संबंध रहा है। नृत्य-गान आदि का, आदि ग्रन्थ भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' ने सिद्धांत बना दिया था कि नाटक की कथा-वस्तु चाहे पौराणिक हो या सामाजिक, हर प्रदर्शन का प्रारम्भ 'पूर्वरंग' से होगा और पूर्वरंग में सबसे पहले मंच पर ब्रह्मा के कलश की पूजा होगी, फिर मंगलाचरण होगा, फिर नर्तकियां पुष्पांजलि में फूल लेकर मंच पर आकर सभी दिशाओं के देवताओं को पुष्प अर्पित करेंगी[1]। भले ही यथावत इस परम्परा का प्रयोग कलाकारों द्वारा आज नहीं होता, किन्तु प्रत्येक युग एवं भारत के प्रत्येक प्रांत में नृत्य कलाकार मंगलाचरण की परम्परा का निर्वाह करते चले आ रहे हैं। भले ही आंशिक रूप से हो लेकिन नृत्यारंभ में ईश्वर की स्तुति अनिवार्य होती है।

प्राचीनकाल से ही नृत्य संगीतादि कलाओं को समाज में विशिष्ट स्थान प्राप्त था। इन कलाओं द्वारा भगवान की उपासना की जाती थी। नृत्यकला का प्रदर्शन मंदिरों में देवताओं की स्तुति के लिए किया जाता था, जिससे प्रमाणित होता है कि समाज में नृत्यकला को सम्मानीय स्थान प्राप्त था और धर्म से इस कला का अभिन्न सम्बन्ध रहा है। लव-कुश द्वारा कथा-गायन एवं नर्तन द्वारा समाज के लोगों को रामकथा सुनाई गई। मीरा बाई, नरसी मेहता जैसे ईश्वर भक्तों ने भी नृत्य-संकीर्तन द्वारा ईश्वर की भक्ति की। उस समय भी कलाओं को शिक्षा में स्थान प्राप्त था। राजपरिवारों के राजकुमार आश्रम में गुरूजनों के सानिध्य में रहकर विभिन्न प्रकार की शिक्षा ग्रहण करते थे और कुछ वर्ष गुरू आश्रम में विधिवत शिक्षा प्राप्त कर पारंगत होने पर राजमहल लौटते थे। भगवान श्री राम, श्री कृष्ण, पांडव-कौरव आदि सभी ने गुरू आश्रम में रहकर शिक्षा एवं कलाओं का अध्ययन किया एवं प्रायोगिक रूप से भी उन्हें सीखा समाज के भद्र परिवारों में कलायें पुष्पित पल्लवित हो रहीं थीं। कलाओं के द्वारा हम किसी भी प्रांत के रीति रिवाज एवं परम्पराओं से स्वतः ही परिचित हो जाते है। जन्म से लेकर मृत्यु तक होने वाले सारे संस्कार, परम्पराओं, रीति-रिवाजों, मांगलिक अवसरों, त्योहारों आदि में कलाओं का विशिष्ट स्थान होता है। नृत्यकला एक ऐसा सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा हम अपने भावों की अभिव्यक्ति कर सकते हैं इस कला के द्वारा न केवल हम अपने आनंद की अभिव्यक्ति करते हैं अपितु देखने वाले लोगों में भी आनंद की एवं रस की सृष्टि करते हैं। नृत्यकला प्रदर्शनकारी कलाओं के अन्तर्गत आने वाली एक विशेष मनोरंजक कला है, जिसे सभी आयु वर्ग, धर्म, जाति एवं सम्प्रदाय के लोग पसंद करते हैं। भारत देश में विभिन्न शासकों ने शासन किया। मध्यकाल में हमारे देश में मुगल शासकों का शासनकाल था उन्होंने

अपनी रूचि के अनुसार कलाओं में परिवर्तन करवाये, जिसका प्रभाव नृत्यकला पर भी पड़ा। दक्षिण प्रदेशों में मुगल प्रभाव उतना अधिक नहीं पड़ा जितना कि उत्तर भारत में। उत्तर भारत में प्रचलित शास्त्रीय नृत्य 'कथक' का तो स्वरूप परिवर्तित इसी कालखण्ड में हुआ। यह नृत्य मंदिरों के प्रांगण से राजदरबार में पहुँच गया। नृत्य का उद्देश्य ईश्वरोपासना न रहकर लोकानुरंजन हो गया। नृत्याचार्यो को दरबार में नृत्यकला का प्रशिक्षण देने के लिए नियुक्त किया गया, जहाँ पर उन्हें वेश्याओं को नृत्यकला में दक्ष करने के लिए कहा गया। इस तरह नृत्याचार्यो में चारित्रिक दोष आ गए और नृत्यकला सभ्य समाज से दूर होने लगी। वर्षो तक भद्र परिवार की लड़कियाँ इस कला का प्रदर्शन करने और सीखने से वंचित रहीं। इस सब उतार-चढ़ाव के बीच भी नृत्यकला धार्मिक तत्वों से अछूती नहीं रही। दरबारी नृत्य में भी नायक-नायिका श्री कृष्ण और श्री राधा ही शोभायमान रहीं और नृत्य प्रदर्शन में रस की सृष्टि होती रही, हालांकि कथक नृत्य की विषय सामग्री में मुगलकाल का प्रभाव स्पष्ट रूप स्थापित हो चुका था। आज की कथक नृत्य प्रस्तुति में भी मुगल प्रभाव स्पष्ट रूप से देख, जा सकता है। वेशभूषा, संगत, वाद्य-वादन, गायन शैली आदि सभी मुगलशैली से प्रभावित हुये। वैष्णव समप्रदाय के प्रचार-प्रसार से भी कथक नृत्य का धार्मिक स्वरूप सुदृढ़ रहा और रासलीला एवं कथक नृत्य में एक घनिष्ट सम्बन्ध भी माना जाता है।

अंग्रेजों के शासन काल में नृत्यकला में कोई विशेष परिवर्तन तो नहीं हुए, किन्तु विदेशी कलाओं से भारतीय कलाकारों का परिचय होने से नृत्यकला में प्रयोग और संभावनाओं के द्वार खुल गए। संगीत संस्थाओं की स्थापना हुई। विदेशों में भी भारतीय नृत्यकला का प्रचार-प्रसार होने लगा। बहुत से विदेशियों ने भारतीय नृत्यकला का विधिवत प्रशिक्षण भी प्राप्त किया। इस सब के बाद भी भारतीय नृत्यकला में धार्मिक तत्व यथावत रहे जिन्हें उसी रूप में सीखा गया एवं अंगीकृत किया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नृत्यकला पुनः सभ्य समाज की अभिरूचि बनी। नृत्यकला को सम्मानीय मंच मिलने लगा। शैक्षणिक पाठ्यक्रम में नृत्य को अन्य विषयों की तरह एक विषय के रूप में शामिल किया गया। प्रायोगिक पक्ष के साथ-साथ नृत्यकला के सैद्धांतिक पक्ष का भी पर्याप्त विस्तार हुआ। आज के शिक्षित युवा अपने देश की कलाओं के प्रति जागरूक हो चुके है एवं प्रत्येक कला चाहे वह शास्त्रीय हो या लोक उसके संरक्षण एवं संवर्धन के लिए अथक प्रयास कर रहे हैं। नृत्यकला में काफी शोध भी हो रहे है। जब नृत्यकला के इतिहास का अध्ययन करते हुए हम उसकी विकास यात्रा में शामिल होकर वर्तमान तक का सफर तय करते हैं तब हमें ज्ञात होता है कि भारतीय नृत्यकला ने बहुत से उतार-चढ़ाव का सामना किया है जिससे समय-समय पर उसके बाह्य स्वरूप में तो परिवर्तन हुए पर उसकी आत्मा में ईश्वरीय तत्व ही विद्यमान रहे, जिससे भारतीय नृत्यकला का धार्मिक स्वरूप अपनी गरिमामय पहचान के साथ समाज में प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त करता रहा है। कुछ समय के लिए सभ्य समाज में नृत्यकला को लेकर थोड़ा नकारात्मक भाव आया किन्तु शीघ्र ही नृत्यकला ने समाज में पुनः सम्मानीय मंच प्राप्त किया।

वर्तमान काल शैक्षिक जगत में प्रचलित सभी विषयों की तरह नृत्यकला भी अध्ययन का विषय है,

जिसमें विद्यार्थी विधिवत शिक्षा प्राप्त करते हैं, शोध कार्य करते हैं और समाज में सम्मान के साथ एक कलाकार के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। नृत्यकला के क्षेत्र में जीविका के अनेकानेक द्वार खुल चुके हैं। उच्च शिक्षा में अध्ययन, विभिन्न पात्रता परीक्षाएं, शोधकार्य, छात्रवृत्तियाँ आदि अन्य विषयों की भाँति नृत्यकला में भी शामिल है। सरकार द्वारा अनेकों पुरस्कार, छात्रवृत्तियाँ नृत्यकला के क्षेत्र में कलाकारों को दी जाती हैं। बाल महोत्सव, युवा उत्सव आदि के माध्यम से नृत्य के विद्यार्थियों को मंच पर प्रस्तुति एवं प्रतिस्पर्धा के अवसर प्राप्त होते है जिससे उनमें आत्मविश्वास का विकास होता है और समाज में भी कलाओं के प्रति जागरूकता का संदेश जाता है। धार्मिक पृष्ठभूमि पर अवस्थित भारतीय नृत्यकला को आज समाज में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। नृत्य के कलाकारों को भी समाज में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। हमारे देश की कलायें विदेशों में भी अपने देश के सांस्कृतिक गौरव का प्रतिनिधित्व करती हैं।

संदर्भ -

1. आजाद, पं. तीरथराम - कथक ज्ञानेश्वरी/नटेश्वर कला मंदिर नई दिल्ली/द्वितीय संस्करण 2010/पृ. 508